International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 1 Issue 1 December. 2011 || PP. 61-63

मिथिला का दर्शन

प्रो. राधाकान्त ठाकुर

आत्मावलोकन या आत्मालोचन का नाम ही दर्शन है । मिथिला प्रारम्भ से ही अध्यात्मविद्या का केन्द्र रही है । यहाँ जनक, याज्ञवलक्य आदि ऋषियों ने आत्मविद्या को प्रशस्त किया है । आत्मदर्शन ही मिथिला में दर्शन है । इस लिए कहा गया है –

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ।
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥[1]

यहाँ तो जन-जन में आलोचना की शक्ति है और हर व्यक्ति तार्किक है । कहा भी गया है –

"दर्शनं तु विज्ञेयं मिथिलायाः व्यवहारतः ।"

मिथिला धर्मनगरी है । यहाँ धर्म और दर्शन - दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है । धर्म की नौका पर चढ़कर मोक्ष तक पहुँचना मिथिला की जीवन-यात्रा रही है । यहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से जीवन का परमोद्देश्य मोक्ष रहा है जो दर्शन से प्राप्त होता है । महर्षि वेदव्यास ने अपने पुत्र शुकदेवजी को ब्रह्मज्ञान की शिक्षा लेने जनक के पास भेजा था । शुकदेवजी को राजा जनक ने आत्मसंयम का प्रायोगिक ज्ञान इस तरह दिखाया कि अकस्मात् राजमहल में आग लग गयी है । परन्तु राजा जनक विचलित नहीं हैं । उनका तत्त्वचिन्तन प्रभावित नहीं हुआ है । जनक कहते हैं –

"मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे किञ्चन दह्यति ।"[2]

जनक के वंश में जितने राजा हुए हैं ज्ञानी एवं विदेह हुए हैं । जैसे कहा गया है –

"वंशेऽस्मिन्येऽपि राजानस्ते सर्वे जनकास्था ।
विख्याताः ज्ञानिनः सर्वे विदेहाः परिकीर्तिता: ॥"[3]

मिथिला में दर्शन वर्तमान जीवन को अतीत और भविष्य के जीवन के बीच की कड़ी बताता है । दर्शन जीवन का पथ प्रदर्शन करता है । हमें दुःख में भी दर्शन यह बोध कराता है कि यह पीड़ा हमारे अतीत के कर्मों का फल है । अतः हमें अच्छे कर्मों से अपने भविष्य को सजाना है । दर्शन क्षमा, दया, तप, त्याग आदि आत्मिक गुणों को उजागर करते हुए दोष, लोभ आदि दोषों को दूर करता है । आत्मचिन्तन से ही हम अपने दोष एवं दुर्वहार को समझ सकते हैं तथा उसे नियन्त्रित कर सकते हैं । दर्शन में आत्मानुशासन पर बल दिया गया है । आत्मानुशासन से ही आत्मानुभूति सम्भव है । आत्मानुशासन एक नैतिक संयम है, जिससे अहम् दूर होता है । अहंकार आत्मावलोकन में सर्वाधिक बाधक है । अहंकार से जीवन अशान्त होता है तथा हम मोक्षमार्ग से च्युत होते है । जैसे –

'निर्ममो निरहङ्कार: स शान्तिमधिगच्छति'[4]

अन्तरात्मा की आवाज हमें सम्भाल सकती है । आत्मदर्शन से आत्मा की आवाज़ बुलन्द होती है । आत्मा हमें सन्मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करती है । जैसे –

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः[5]

दर्शन में आत्मा के विषय पर विशद् आलोचना की गई है । अतः भारतीय दर्शन में **'अयमात्मा ब्रह्म', 'जीवो ब्रह्मैव नापरः', 'तत्त्वमसि'** इत्यादि वचन कहे गए हैं । यहाँ संसार को मिथ्या मानकर ब्रह्म को इस लिए सत्य कहा गया है, क्योंकि संसार एवं शरीर का नाश हो जाता है, परन्तु आत्मा का विनाश नहीं होता है । आत्मा, पुनर्जन्म, कर्म और मोक्ष हमारे दर्शन के आधारस्तम्भ हैं । आत्मा के स्वरूप का दर्शन करना ही दर्शन है । याज्ञवल्क्य ने कहा गया है –

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य:'[6]

उपनिषदों में भी आत्मा के बारे में **'नेति नेति'** कहकर आत्मा को अनिर्वचनीय स्वीकार किया गया है ।

देश में ऐसे भी बड़े-बड़े विद्वान् हुए हैं जिन्होंने अपने चातुर्यपूर्ण तर्कों से अनीश्वरवाद का समर्थन करते हुए नास्तिक धर्म को प्रकाशित करने का ज़ोरदार प्रयास किया है । परन्तु मिथिला में ऐसे अद्भुत विद्वान् हुए जिनके अनुमान प्रमाण के सामने लाखों कुतर्कों के बावजूद अनीश्वरवाद का पाँव नहीं जम पाया । आस्तिकता हमारे धर्म-दर्शन का प्राण है। जब नास्तिकों ने हमारे धर्म एवं दर्शन की धारा को नष्ट करने का प्रयास किया, तब कुमारिल भट्ट ने अपनी प्रतिभा से मीमांसा को बचाया, जैसा कि उन्होंने कहा है –

प्रायेणैषा हि मीमांसा लोके लोकायतीकृता ।
तामास्तिकपथे कर्तुमयं यत्नः कृतो मया ॥[7]

यहाँ दर्शन इश्वरवाद पर रहा है तथा इसका दृष्टिकोण आध्यात्मिक है । यहाँ बड़े-बड़े दार्शनिक हुए हैं । दार्शनिकों की शृंखला में न्यायसूत्रकार गौतममुनि प्रथम हैं । न्यायसूत्र पर नास्तिकों ने आक्षेप करते हुए भ्रान्तिजन्य टीका लिख दी । दर्शन पर कुतार्किकों के आक्षेप को दूर करने के लिए उदयनाचार्य ने में लिखा है –

यदक्षपाद प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगतो जगाद ।
कुतार्किकाज्ञाननिर्वृत्तिर्हेतुः करिष्यते तस्य महा निबन्धः ॥[8]

जब न्यायवार्त्तिक पर भी कुतार्किकों ने प्रतिभा प्रदर्शनपूर्वक प्रहार करना शुरू कर दिया, तब मिथिला में वाचस्पति मिश्र का उदय हुआ । वाचस्पति मिश्र ने नास्तिकों को मुँहतोड़ उत्तर देते हुए तात्पर्यटीका लिखकर न्यायवार्तिक का उद्धार किया । इस लिये उन्होंने अपनी न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका के प्रारम्भ में कहा है –

इच्छामि किमपि पुण्यं दुस्तरकुनिबन्धपङ्कमग्नानाम् ।
उद्योतकर गवीनामातिजरतीनां समुद्धरणात् ॥

वाचस्पति मिश्र ने सभी दर्शनों को स्वरूप दिया है । वाचस्पति मिश्र ने सभी दर्शनों पर उच्चतम कोटि की टीका लिखी है । पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वदी ने कहा है –

सर्वदर्शन कान्तारसमुत्फलनकेशरी ।
वाचस्पतिर्विजयते वाचस्पतिनिभो भुवि ॥

दर्शन में मिथिला के वाचस्पति मिश्र का योगदान अनुपम रहा है । किसी ने ठीक ही कहा है –

'वाचस्पति समो विद्वान् न भूतो न भविष्यति'

मिथिला में वाचस्पति मिश्र के बाद दर्शन के आकाश में उदयनाचार्य का उदय हुआ । इन्होंने दर्शन के भण्डार को भर दिया तथा नास्तिकों एवं कुतार्किकों की हवा निकाल दी । इनका न्यायकुस्माञ्जलि ग्रन्थ ईश्वरवाद का सबसे प्रसिद्ध और मनोहर अवदान है । उदयनाचार्य जैसे विद्वान थे, उसी तरह स्वाभिमानी थे । भगवान् जगन्नाथ के प्रति इनकी स्वाभिमानोक्ति प्रसिद्ध है –

ऐश्वर्य मदमत्तोसि मामवज्ञाय वर्तसे
उपस्थितेषु द्धे मदधीना तव स्थितिः ।

उदयनाचार्य की विद्वत्ता उनकी इस गर्वोक्ति से प्रतीत होती है –

वयमिह पददविद्यां तर्कमान्वीक्षिकीं वा
यदि पथि विपथे वा वर्तयामः स पन्थाः ।
उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा
नहि तरणिरन्दीते दिक् पराधीनवृत्तिः ॥

बारहवीं शताब्दी में मिथिला में एक अद्भुत विद्वान् ने जन्म लिया जिनका नाम गङ्गेश उपाध्याय है । इन्होंने न्यायतत्त्वचिन्तामणि लिखकर न्यायशास्त्र की शैली एवं धारा को बदलते हुए नव्यन्याय का सृजन किया । अतः नव्यन्याय की जन्मभूमि मिथिला मानी जाती है । आज तक चिन्तामणि पर शताधिक टीकाएँ लिखी गयी हैं । गङ्गेश उपाध्याय के बाद मिथिला में वर्धमान उपाध्याय, पक्षधर मिश्र, शङ्कर मिश्र , द्वितीय वाचस्पति मिश्र आदि अनेक विद्वान् हुए, जिन्होंने नव्यन्याय की परम्परा विकसित की ।

मिथिला की नव्यन्याय-परम्परा वासुदेव सार्वभौम के द्वारा नवद्वीप (बङ्गाल) गयी । बङ्गाल में रघुनाथ शिरोमणि नव्यन्याय के बहुत बड़े विद्वान् हुए जिन्होंने चिन्तामणि पर दीधिति-टीका लिखी । तदनन्तर विद्वानों ने दीधिति पर लिखना प्रारम्भ किया । गदाधर भट्टाचार्य ने गादाधारी तथा जगदीश भट्टाचार्य ने जागदीशी टीका लिखी । पुनः टीका-प्रटीका एवं न्याय-परम्परा पूरे भारत में प्रारम्भ हो गयी ।

1. पक्षधरः प्रतिपक्षी लक्षीभूतो न च क्वापि ।
2. बालोह जगदानन्द न मे बाला सरस्वती ।

जब व्यक्ति दलदल में फँसता है तब चेतना जागती है और आलोचना तीव्र होती है, फिर अपना दर्शन मार्गप्रदर्शन करता है । अध्यात्मविद्या एवं दर्शन कल उपयोगी थे तो निःसन्देह आज भी उपयोगी हैं ।

दर्शन के उद्भव-बिन्दु को प्रकाशित करते हुए गंगेशोपाध्याय अपने तत्त्वचिन्तामणि के आरम्भ में लिखते हैं कि परम दयान्वित गौतम मुनि ने दुःख पंक में फँसे हुए लोगों के उद्धार के लिए न्यायविद्या का प्रादुर्भाव किया –

अथ जगदेव दुःखपडकनिमग्नमुद्दिधीर्षुः आष्यदशविद्यास्थानेष्वभ्याहंत-तमामान्वीक्षिकीं परमकारुणिको मुनिः प्रणिनाय ।

परन्तु आज भौतिकवादी युग में मनुष्य विज्ञान के सहारे सुख की खोज करता है, किन्तु सुख की जगह दुःख ही हाथ लगता है । विज्ञान ने बड़े-बड़े चमत्कार किए हैं, परन्तु आत्मा का स्वरूप "**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः**"[9] सिद्ध करने में विफल रहा है । विज्ञान ने बाहर से हमें बहुत ही विकसित और अलङ्कृत किया है । हमें उपभोक्तावाद ने त्याग, सेवा आदि आदर्शों को भुलाकर सुविधाभोगी बना दिया है । हम अपने धर्म, दर्शन एवं संस्कृति से दूरभाग रहे हैं । अतः इस वैज्ञानिक युग में आध्यात्मिक जागरण की बहुत बड़ी आवश्यकता है । समाज की उन्नति धर्म और दर्शन से ही सम्भव है । धर्म के बिना समाज का पतन निश्चित है । **'धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताङ्वत्यधर्मेण'**[10] - दर्शन के बिना हम दिशाविहीन हो जायेंगे । धर्म के बिना मानवता और पशुता का अन्तर नष्ट हो जायेगा । जैसे –

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिन्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः: समानाः ॥[11]

अतः आधुनिक पीढ़ी के लिये दर्शन के अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता है । भारतीय दर्शन में समस्त लोककल्याण की भावना है । यहाँ दर्शन में '**सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय**','**सर्वे भवन्तु सुखिनः**' आदि लोककल्याणकारी वचन विश्वशान्ति हेतु उपलब्ध हैं ।

उद्धरण

[1] भागवतपुराण - 9.13.27
[2] महाभारत, शान्तिपर्व, 223.177
[3] देवीभागवतप्राण, 6.15.30
[4] भगवद्गीता, 2.71
[5] भगवद्गीता
[6] बृहदारण्यकोपनिषद् 2.3.5
[7] श्लोकवार्तिक - 1.10
[8] न्यायपरिशुद्धि
[9] भगवद्गीता, 2.23
[10] सांख्यकारिका, 44
[11] हितोपदेश, प्रस्ताविका, 25